जीव-हत्या और पशु-बलि इस्लाम की नज़र में

मुहम्मद ज़ैनुल-आबिदीन मंसूरी

JEEV HATYA AUR PASHU BALI : ISLAM KI NAZAR MEIN (HINDI)

मधुर सन्देश संगम (ट्रस्ट रजि०) प्रकाशन नं० H-53

पुस्तक का नाम : जीव हत्या पशु बलि इस्लाम की नज़र में

लेखक : मुहम्मद ज़ैनुल-आबिदीन मंसूरी

प्रकाशक : **मधुर सन्देश संगम**

E-20, अबुल-फ़ज़्ल इंक्लेव,
जामिआ नगर, नई दिल्ली-25
फ़ोन : 011-26953327, 09212567559
फ़ैक्स : 011-23276741
e-mail : madhursandeshsangam@yahoo.co.in

मिलने का अन्य पता :

एम० एम० आई० पब्लिशर्स
D-307, अबुल-फ़ज़्ल इंक्लेव,
जामिआ नगर, नई दिल्ली-25

संस्करण : 2009 ई०

पृष्ठ : 16

मूल्य : 7.00

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम
'अल्लाह कृपाशील दयावान के नाम से'

दो शब्द

भारत जैसे बहु-धर्मीय देश में तीन स्थितियाँ स्थाई रूप से पाई जाती हैं। एक : अपने धर्म के अतिरिक्त, अन्य धर्मों को भी समझने की जिज्ञासा व चेष्टा। दो : दूसरे धर्मों के प्रति अप्रामाणिक सूत्रों से अर्जित ज्ञान के परिणामस्वरूप उन धर्मों के प्रति भ्रम, शंकाएँ एवं ग़लतफ़हमियाँ। तीन : कुछ शक्तियों, तत्वों व समुदायों द्वारा कुछ सक्रिय धर्मों......विशेषकर 'इस्लाम', के प्रति दुष्प्रचार के परिणामस्वरूप उन धर्मों के प्रति भय, घृणा, आक्रोश, दुर्भावना एवं अनुचित आक्षेप। इस त्रिपक्षीय परिस्थिति में मुस्लिम समुदाय पर यह भारी ज़िम्मेदारी आ पड़ी है कि अपने देशवासी भाइयों के मन-मस्तिष्क में उत्पन्न उलझनों को दूर करे और इस्लाम से संबंधित उभरनेवाले प्रश्नों का संतोषजनक व तथ्यपरक उत्तर देने एवं शंकाओं को दूर करने का भरसक प्रयत्न करे।

उन प्रश्नों में से एक प्रश्न है मांसाहार व जीव-हत्या का, तथा इसके संदर्भ में 'ईद-उल-अज़हा' त्योहार के अवसर पर की जाने वाली जानवरों की क़ुरबानी की सार्थकता व औचित्य का। ग़ैर-मुस्लिम भाइयों की उलझन यह है कि इस्लाम जब दया और प्रेम-भाव की शिक्षा देता है तो पशु-पक्षियों के प्रति निर्दयता क्यों? इस्लाम अपने अनुयायियों को जब शिक्षा देता है कि अपने काम इन बोलों से प्रारंभ करें कि—"अल्लाह दयावान, कृपाशील के नाम से" तो फिर वह उन्हें पशु-वध जैसी निर्दयता व क्रूरता की इजाज़त क्यों देता है? जब क़ुरआन, अपने लानेवाले पैग़म्बर (हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) को 'रहमतुल-लिल-आलमीन' (सारे जहानों के लिए साक्षात् दया-कृपा) की उपाधि देता है तो क्या वे पशु इस दया-कृपा के पात्र नहीं, जिनके वध की पैग़म्बर-ए-इस्लाम ने इजाज़त दी और स्वयं इसपर अमल किया, यहाँ तक कि ईद-उल-अज़हा (बक़रईद) में, जो इस्लाम का महत्वपूर्ण त्योहार है, अल्लाह एवं पैग़म्बर ने जानवरों की क़ुरबानी (पशु-बलि) को धार्मिक मान्यता प्रदान कर

दी। क्या बिस्मिल्लाह कहकर, अर्थात् अल्लाह का नाम लेकर किया जानेवाला 'बुरा काम' भी 'अच्छा काम' हो जाता है? इस प्रकार की उलझनें विशेष रूप से हमारे आर्यसमाजी भाइयों को काफ़ी परेशान करती हैं। उनका मुस्लिम समुदाय पर यह हक़ (अधिकार) है कि उनकी उलझन दूर करने का मुस्लिम समुदाय प्रयास करे। यह लेख इसी हक़ को अदा करने का एक प्रयास है। इसके साथ ही पाठकों का भी यह कर्तव्य है कि इसे पूर्वाग्रहरहित (Non-prejudiced) होकर पढ़ें।

नई दिल्ली — लेखक

31-03-2008 — **मुहम्मद ज़ैनुल-आबिदीन मंसूरी**

जीव-हत्या और इस्लाम

सृष्टि और स्रष्टा में संबंध

सामान्य नियम है कि किसी समग्र (Totality) में से उसके किसी 'अंश' (Part) को अलग करके उसे ठीक से और पूरी तरह समझा नहीं जा सकता। ज्ञान-विज्ञान की सारी प्रणाली इसी सिद्धांत की धुरी पर घूमती है। इस्लाम, इस्लामी शरीअ़त (विधान) तथा इस्लामी शिक्षाओं, नियमों,आदेशों व धार्मिक रीतियों की वास्तविकता और यथार्थता को समझने पर भी यही सिद्धांत लागू होता है। पशुओं के साथ मनुष्य का व्यवहार कैसा हो और इस व्यवहार की उचित सीमा क्या हो? यह जानने के लिए सृष्टि, मनुष्य तथा पृथ्वी पर विद्यमान प्राणियों एवं इन सबके स्रष्टा में परस्पर क्या और कैसा संबंध है, इसपर विचार करना आवश्यक है। इसके बिना उपरोक्त प्रश्न का उत्तर नहीं मिल सकता। अतः आवश्यक है कि पहले इसे समझने का प्रयास किया जाए।

इस्लाम की मूलधारणा है कि समस्त सृष्टि का रचयिता व स्रष्टा 'ईश्वर' है......एक, अकेला ईश्वर। वह निराकार, सर्वविद्यमान, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ एवं अपार तत्वदर्शी है। वह पूरी सृष्टि का पालक-पोषक, संयोजक-प्रबंधक एवं स्वामी (Lord) है। मनुष्य इसी सृष्टि का अंश है और ब्रह्माण्ड में मौजूद हर वस्तु की तरह यह पृथ्वी, एवं इसके ऊपर या इसके भीतर विद्यमान सारे पदार्थ, जीवधारी व अजीवधारी, चल व अचल वस्तुएँ भी उसी स्रष्टा द्वारा सृजित हैं। इस्लाम के अनुसार अल्लाह (ईश्वर) की अपार व असीम तत्वदर्शिता (Absolute Wisdom) एवं उपरोक्त अन्य गुणों (Attributes) की अपेक्षा यह है कि समस्त मानवजाति का पूर्ण मार्गदर्शन ईश्वर ही करे, अर्थात् मार्गदर्शन का यह कार्य स्वयं मनुष्य पर न छोड़ दे।

इस्लाम, मनुष्य को सृष्टि की एक पूर्ण इकाई मानता है जो आध्यात्मिक, नैतिक, शारीरिक व भौतिक सभी पहलुओं को समाहित किए हुए है। अतः इस्लाम की दृष्टि में मनुष्य की समस्त वैयक्तिक व सामाजिक जीवन-प्रणाली ईश्वरीय मार्गदर्शन के अंतर्गत होनी चाहिए। इस जीवन-प्रणाली में आस्था व

धारणा, उपासना व पूजा, दाम्पत्य, पारिवारिक व सामूहिक संबंध, पारस्परिक अधिकार व कर्तव्य, आचरण, व्यवहार तथा खान-पान एवं जीवनयापन शैली में उचित व अनुचित, वैध व अवैध, वांछनीय व अवांछनीय और आर्थिक व राजनीतिक व्यवस्था आदि से लेकर, मनुष्य के सृजन के ईश्वरीय उद्देश्य पर अमल एवं अन्य सारी सृष्टि के साथ मनुष्य के संबंध की रूपरेखा तक...... हर चीज़ आती है। इस्लाम की धारणा है कि यह संसार मनुष्य के लिए बनाया-सजाया गया है और स्वयं मनुष्य को ईश्वर (के आज्ञापालन, उपासना एवं उसके प्रति समर्पित रहने) के लिए। इस संसार के सारे प्राणी व जीवधारी तथा सभी चल या अचल चीज़ें मनुष्य की सेवा व उपभोग के लिए बनाई गई हैं और वे सब, प्रत्यक्ष (Direct) या अप्रत्यक्ष (Indirect), चाहे-अनचाहे, जाने-अनजाने मनुष्यों की सेवा कर रही हैं। प्रत्यक्ष रूप से अनेक वनस्पतियाँ, वृक्ष, अनाज, फल, तरकारियाँ आदि, अनेक पशु-पक्षी व समुद्री जीव (मछलियाँ) आदि मनुष्यों के आहार, सवारी, बोझ ढोने, औषधि व स्वास्थ्य-सामग्री एवं सामान्य उपभोग के लिए सृजित किए गए हैं। अप्रत्यक्ष रूप से असंख्य कीट-कीटाणु, जल-प्राणी, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी इस संसार, वायुमंडल एवं पृथ्वी के गर्भ में उसी प्रकार मानवजाति की सेवा में तल्लीन हैं जिस प्रकार सूर्य, चंद्रमा व तारागण का प्रकाश, उष्मा व ऊर्जा, हवाएँ, बादल, वायुमंडल एवं पूरा सौर-मंडल (Solar system)।

प्रत्येक जीवधारी मनुष्य के उपभोग के लिए है

उपरोक्त विवरण के बाद जीव-हत्या के संबंध में इस्लामी दृष्टिकोण को सरलतापूर्वक समझा जा सकता है। हर जीवधारी (वनस्पति या पशु-पक्षी आदि) को मनुष्य के उपभोग के लिए पैदा किया गया है। पेड़-पौधों, फलों, तरकारियों आदि को काटना (और खाना एवं उपभोग में लाना) भी उसी प्रकार 'जीव-हत्या' है जिस प्रकार मछलियों, पक्षियों एवं पशुओं को खाने के लिए उनकी हत्या करना। आमिष और निरामिष दोनों प्रकार की खाद्य-सामग्री के उपभोग को सभी धर्मों एवं धार्मिक समाजों व समुदायों में मान्यता प्राप्त रही है। इस्लाम भी इसे मान्यता देता है। व्यर्थ पशु-वध—अर्थात् किसी पशु को यूँ ही मारकर छोड़ देना, शिकार या मनोरंजन का शौक़ पूरा करने के लिए किसी जीवधारी को मारकर फेंक देना—इस्लाम में वर्जित है। लेकिन सार्थक

उद्देश्यों के लिए, इस्लाम न केवल जीवधारियों (वनस्पतियों व पशु-पक्षियों आदि) के आहार व उपभोग हेतु मनुष्य को अनुमति देता है बल्कि कहता है कि इन्हीं दो उद्देश्यों की पूर्ति हेतु इन्हें पैदा किया गया है। इस प्रकार देखा जाए तो इस्लाम का दृष्टिकोण कोई अनोखा, अकेला, अभूतपूर्व, अमान्य, अस्वाभाविक व अप्राकृतिक दृष्टिकोण नहीं है बल्कि कुछ नगण्य अपवादों को छोड़कर अतीत से वर्तमान तक के मानव-इतिहास में मनुष्यों, समाजों, संस्कृतियों व सभ्यताओं का सामान्य दृष्टिकोण तथा व्यवहार वही रहा है जो इस्लाम का दृष्टिकोण एवं इस्लाम के अनुयायियों का व्यावहारिक आचरण है।

इस्लाम में हलाल और हराम

इस्लाम की विशिष्टता इस संबंध में यह है कि वह अन्य समाजों के विपरीत, मांसाहार के विषय में एक निश्चित आचारसंहिता (Code of conduct) अपने अनुयायियों को प्रदान करता है जिसे इस्लामी विधान (शरीअत) की परिभाषा में 'हलाल' (वैध) और 'हराम' (अवैध) कहा गया है। इसकी सीमा का निर्धारण स्वयं अल्लाह ने (क़ुरआन में) कर दिया है तथा इसकी विस्तृत व्याख्या अल्लाह के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) के आदर्श (सुन्नत, सीरत व हदीस) में कर दी गई है। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि अल्लाह (ईश्वर) की तत्वदर्शिता व ज्ञान अपार, असीम और पूर्ण है, और चूँकि वह इंसान सहित सृष्टि की हर वस्तु का सृजनकर्ता भी है अतएव, यह वही बेहतर तौर से जानता है कि आहार के लिए कौन-सी वस्तुएँ मनुष्य के शारीरिक हित (स्वास्थ्य) एवं उसके आध्यात्मिक हित (नैतिकता व चरित्र) के लिए लाभदायक या हानिकारक हैं। अतः इस्लाम ने कुत्ते, सूअर, दरिन्दों एवं चंगुल से उठाकर आहार मुँह में डालनेवाले पक्षियों तथा इंसानों का मांस खाना अवैध (हराम) क़रार दिया है। हमारे भारतीय समाजों और अधिकतर धार्मिक समुदायों में भी, सामान्य स्तर पर, मांसाहार के लिए 'उचित' व 'अनुचित' का यही इस्लामी मापदंड प्रचलित है। लेकिन संसार में कुछ क़ौमें, जातियाँ, समुदाय और इक्का-दुक्का लोग ऐसे भी हैं जो मनुष्य, कुत्ते और सूअर आदि का मांस भी खाते हैं। इसके कुप्रभावों को सहज रूप से देखा जा सकता है कि ऐसे लोगों और क़ौमों में कैसे-कैसे पाश्विक व राक्षसीय अवगुण उत्पन्न हो

जाते हैं। उनके शील-स्वभाव और चरित्र कैसे-कैसे नैतिक दुर्गुणों से दूषित एवं पतन-ग्रस्त होते हैं। इस्लाम की विशिष्टता है कि वह जीव-हत्या और मांसाहार के विषय पर अतिवादी (Extremist) नहीं, अपितु संतुलित जीवन-व्यवस्था का समर्थक एवं पक्षधर है। इस्लाम न तो 'अहिंसा' और 'दया' के नाम पर मनुष्य को उन खाद्य-पदार्थों व आहार-सामग्रियों से वंचित करता है जो मनुष्य के आहार व उपभोग के लिए ही सृजित व उत्पन्न की गई हैं और न ही यह मनुष्य को इतना स्वतंत्र छोड़ देता है कि जो भी जी में आए खाए-पिए और जीवधारियों की व्यर्थ हत्या करे। यह व्यर्थ हत्या ही वास्तव में इस्लाम की दृष्टि में निर्दयता है। हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने आदेश दिया है कि पशुओं से उनकी शक्ति एवं सामर्थ्य से अधिक काम न लिया जाए, उनपर इतना बोझ न लादा जाए कि वे उठा न सकें और उन्हें भूखा न रखा जाए। मांसाहार के लिए पशु को ज़िब्ह (Slaughter) करने को इस्लाम ने अनिवार्य किया ताकि पशु के शरीर से सारा रक्त निकल जाए क्योंकि यदि रक्त पशु के अन्दर ही रहकर कोशिकाओं में जम जाए तो उसका माँस स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो जाता है। साथ ही इस्लाम ने यह भी आज्ञा दी कि ज़िब्ह करते समय छुरी की धार मरी हुई (कुंद) न हो बल्कि बहुत तेज़ हो ताकि पशु को अनावश्यक पीड़ा न झेलनी पड़े।

जीव-हत्या और सामान्य समाज

प्रत्येक समाज में जीव-हत्या का प्रचलन विभिन्न रूपों में रहा है और इसे मान्यता प्राप्त रही है। इसके दो आधार रहे हैं। एक : मनुष्यों के लाभ के लिए, दो : मनुष्य और मानव-समाज को क्षति पहुँचाने से बचाने तथा सुरक्षित रखने के लिए। जो लोग इस्लाम पर जीव-हत्या की निर्दयता का आरोप लगाते और आक्षेप व दुष्प्रचार करते हैं उनकी दृष्टि में भी जीव-हत्या के उपरोक्त दोनों आधार मान्य हैं।

मनुष्य के जीवन और स्वास्थ्य के लिए जिस संतुलित आहार (Balanced diet) की अनिवार्यता सर्वमान्य रही है, जिसमें पौष्टिक व स्वास्थ्यप्रद तत्व—विटामिंस, प्रोटीन मिनरल्स, कार्बोहाइड्रेट, लवण (Salts) आदि—पाए जाते हैं, वह जीवधारियों से ही उपलब्ध होते हैं और उनमें से अधिकतर, वनस्पतियों, सब्जियों और पेड़-पौधों को काट कर (जो वास्तव में जीव-हत्या ही है) या

पशु-पक्षियों एवं मछलियों आदि जीवों की हत्या करके ही प्राप्त किए जाते हैं। समुद्र में किसी भी समय-बिन्दु (Point of Time) पर समस्त मानव-आबादी के पौष्टिक आहार की लगभग दो तिहाई आवश्यकतापूर्ति के लिए खाद्य-सामग्री विद्यमान रहती है जिसका कुछ अंश पूरे विश्व (हमारे 'अहिंसा-प्रिय' देश सहित) में बराबर इस्तेमाल में लाया जाता है। इस जीव-हत्या पर कभी आपत्ति नहीं दर्शाई गई है। मांसाहार हेतु पशु-वध के सरकार-अधिकृत बूचड़ख़ानों (Slaughter houses) से पशु-रक्त की पूरी मात्रा उन कंपनियों द्वारा उठा ली जाती है जो मानव-शरीर में रक्त और हीमोग्लोबिन (Haemoglobin) की कमी पूरी करने वाली औषधियाँ व टॉनिक बनाती हैं। इन मृतक पशुओं की खाल, हड्डी, ताँत (नसों), झिल्ली, सींग, बाल आदि से बड़े-बड़े उद्योग चलते हैं, इनकी चरबी खाद्य-सामग्री एवं अन्य उपभोग-सामग्रियाँ बनाने में प्रयुक्त होती है जिन्हें मांसाहारी और मांसाहार-विरोधी, अहिंसावादी, अर्थात् सारी जनता सहर्ष प्रयोग करती है। तब जीव-हत्या, निर्दयता, हिंसा आदि का प्रश्न कहीं नहीं उठता। स्वास्थ्य विज्ञान एवं औषधि विज्ञान (Medical Sciences) में निरंतर शोधकार्य एवं चिकित्सा-विज्ञान के विद्यार्थियों का शोध-कार्य और प्रशिक्षण चूहों, मेढकों, बंदरों आदि की हत्या पर ही टिका हुआ है। यह पूरी वस्तुस्थिति, जिसका ऊपर वर्णन हुआ, इस इस्लामी धारणा की ही पुष्टि करती है कि समस्त जीवधारी, मानव-जाति के हित, उसी के उपयोग व उपभोग के लिए बनाए गए हैं।

ऐसे जीवधारियों की हत्या कर देने को भी हर समाज में मान्यता दी गई है और इसका व्यावहारिक प्रचलन रहा है जो मनुष्य के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हानिकारक, कष्टदायक या घातक होने लगें। ऐन्टीबायोटिक औषधियाँ, जिन्हें हर 'अहिंसावादी' व्यक्ति भी संतोषपूर्वक प्रयोग करता है, जीवधारी बैक्टीरिया की 'हत्या' ही करती हैं। कीटनाशक औषधियाँ, जिनका छिड़काव जीवधारियों के प्रति दयाभाव से ओतप्रोत लोग भी अपने घरों में तथा फ़सलों पर करते हैं, जीवधारी कीड़ों-मकोड़ों की हत्या ही करती हैं। डाकुओं, बदमाशों आदि को पुलिस जनहित में गोली मार देती है, वह भी जीव-हत्या ही है। बड़े-बड़े अपराधियों और देश-द्रोहियों को सरकार फ़ाँसी पर लटका देती है और युद्ध में शत्रु देश के सैनिकों की हत्या कर दी जाती है तथा शांति व क़ानून व्यवस्था को भंग करनेवाले उपद्रवियों को जब देखते ही गोली मार

(Shoot at Sight) दी जाती है तो यह भी जीव-हत्या ही होती है। लेकिन कभी भी, कहीं भी मात्र इस तर्क पर कि यह सब जीव-हत्या, निर्दयता, बर्बरता, क्रूरता और हिंसा है, ऐसी जीव-हत्याओं पर 'हत्या' का आरोप नहीं लगता, न ही व्यक्ति, समुदाय, प्रशासन, सरकार एवं राष्ट्र पर आक्षेप किया जाता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि जीव-हत्या अपने आप में अवांछनीय, अनुचित, पाप या अपराध नहीं है। कुछ नैतिक, कुछ सामाजिक व सैद्धांतिक मापदंड कभी इसे उचित भी ठहराते हैं और कभी अनुचित, अमानवीय, अपराध एवं पाप भी क़रार देते हैं। यही बात मनुष्य के स्वभाव एवं उसकी आवश्यकताओं के ठीक अनुकूल भी है। इस्लाम एक व्यावहारिक धर्म एवं स्वाभाविक व संतुलित जीवन-व्यवस्था है। अतः जीव-हत्या के विषय पर उसकी नीति इसी सत्य पर आधारित है।

पशु-बलि (क़ुरबानी) और इस्लाम

पशु-बलि को विश्व के दो बड़े धर्मों, सनातन धर्म और इस्लाम धर्म में मान्यता प्राप्त है; सनातन धर्म के अनुसार 'देवताओं को प्रसन्न करने के लिए'[1] और इस्लाम धर्म के अनुसार 'अल्लाह को प्रसन्न करने के लिए' पशु-बलि का विधान है। सनातन धर्म में 'देवताओं को प्रसन्न करने' से क्या अभिप्रेत है और मनुष्य के आध्यात्म, आचार-विचार एवं चरित्र व आचरण पर पशु-वध के क्या अच्छे प्रभाव पड़ते हैं तथा मनुष्य के व्यक्तिगत व सामाजिक जीवन में नैतिक स्तर पर, पशु-वध द्वारा कैसे सकारात्मक प्रभाव पड़ने अपेक्षित हैं यह इस लेख का विषय नहीं, अपितु सनातन धर्मावलंबियों, विचारकों एवं धर्म-विद्याचार्यों के लिए अपने आप में एक शोध-विषय है। अलबत्ता, इस संबंध में इस्लामी दृष्टिकोण यह है—

इस्लाम में, इस्लामी कैलेंडर (हिजरी सन्) के बारहवें मास 'ज़िल-हिज्जा' की दसवीं, ग्यारहवीं व बारहवीं तिथि को 'ईद-उल-अज़हा' त्योहार के अवसर पर पशु की बलि दी जाती है जिसे क़ुरबानी कहा जाता है। इसके अतिरिक्त हज को जाने वाले हर व्यक्ति पर भी यह क़ुरबानी अनिवार्य है। विश्व के अन्य भागों में जानवर की क़ुरबानी करने की सामर्थ्य रखनेवाले हर मुसलमान पर (जो बालिग़ भी हो) क़ुरबानी अनिवार्य है। यह बलि, निर्दयता व हिंसा का द्योतक नहीं है। यह न मात्र पशु-हत्या है, न ही मात्र एक धार्मिक रीति जिसका कोई महान ध्येय और मनुष्य के जीवन की व्यावहारिकताओं में कोई रचनात्मक भूमिका एवं महत्वपूर्ण योगदान न हो। क़ुरबानी का एक प्रामाणिक व विश्वसनीय इतिहास है जो विश्व के सबसे अधिक प्रामाणिक ईश-ग्रंथ

---

[1] हिन्दू धर्म-ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से पशु-वध की अनुमति तथा आदेश मौजूद हैं। देखें :
मनु॰—3/123, 3/268, 5/23, 5/27-28, 5/35-36
ऋ॰—10/27/2, 10/28/3
अथर्व॰—9/6/4/43/8
श॰ब्रा॰—3/1/2/21

'क़ुरआन' में उल्लिखित है तथा जिसकी व्याख्या अंतिम ईश-दूत (पैग़म्बर) हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) के अति विश्वसनीय कथनों (हदीस) में वर्णित है। इतिहास के साथ-साथ इसका असल उद्देश्य भी, इस्लाम के उपरोक्त दोनों मूल-स्रोतों में खोल-खोलकर वर्णित कर दिया गया है। इस इतिहास पर एक दृष्टि डाल लेना क़ुरबानी की इस्लामी अवधारणा को समझने के लिए अनिवार्य है।

क़ुरबानी का इतिहास

क़ुरबानी का इतिहास 4000 वर्ष पुराना है जिसका आरंभ इस्लाम (तथा यहूदी व ईसाई धर्म) के महान पैग़म्बर हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) से संबंधित एक असाधारण घटना से होता है। यह घटना तीनों धर्मों के धर्म-ग्रंथों में उल्लिखित है तथा क़ुरआन, इन तीनों में एक मात्र प्रामाणिक ईश-ग्रंथ है।

4000 वर्ष पूर्व जब अज्ञानता के घोर अंधकार में, मानव-जाति निराकार एकेश्वरवाद की सीधी राह से भटककर साकार अनेकेश्वरवाद की मिथ्या धारणा में फँसी हुई थी; सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्रों, तारों, पत्थरों, प्रेतात्माओं, पूर्वजों और शक्तिशाली शासकों की उपासना और मूर्ति-पूजा में लिप्त तथा नाना प्रकार के अंधविश्वासों व आडम्बरों से ग्रस्त थी। अपने से तुच्छ पदार्थों के सामने एवं अपने ही जैसे मनुष्यों के चरणों में शीश नवाते-नवाते मनुष्य की गरिमा, गौरव व स्वाभिमान (जो ईश-प्रदत्त था) अपमानित और छिन्न-भिन्न हो चुका था, तात्कालिक पूरी मानव-जाति में एकेश्वरोपासक एक भी व्यक्ति बाक़ी न रह गया था। इन विषम परिस्थितियों में ईराक़ के 'उर' नामक नगर के वासी 'महंत-महापुजारी' ''आज़र'' के घर में, उसी के बेटे 'इबराहीम को ईश्वर ने, शिर्क (अनेकेश्वर-पूजा) के घोर अंधेरे में तौहीद (विशुद्ध एकेश्वरवाद) की ज्योति जलाने के लिए चुन लिया और उन्हें अपना पैग़म्बर (ईश-दूत) नियुक्त किया।

हज़रत इबराहीम ने शिर्क के विरुद्ध ऐसे सशक्त एवं बुद्धिसंगत तर्क दिए जिनकी कोई काट नहीं थी। फिर भी उनका घोर विरोध किया गया। वे इस ज्योति का प्रकाश फैलाने इराक़ से फ़िलिस्तीन, वहाँ से मिस्र और वहाँ से अरब प्रायद्वीप के मध्य-पश्चिमी भाग में गए। अल्लाह ने उनपर एक अत्यंत कठिन कर्तव्य का भार डाला था। यह कर्तव्य एक ऐसा व्यक्ति ही निभा सकता था

जो ईश-आज्ञापालन, ईश-भय, ईशपरायणता एवं ईश्वर के समक्ष संपूर्ण आत्म-समर्पण में उत्कृष्ट, सुदृढ़ और अडिग हो। हर स्वार्थ, हर सुख, हर मनोकामना, हर लाभ, हर इच्छा और हर तरह के प्रेम की, ईश-प्रेम हेतु बलि दे सकता हो। इतना ऊँचा चरित्र और ऐसा सशक्त आत्मबल हज़रत इबराहीम के व्यक्तित्व में उत्पन्न करने के लिए अल्लाह ने बड़ी-बड़ी कठिनाइयों से गुज़ारकर उन्हें तैयार भी किया, प्रशिक्षण भी दिया और कई कठिन परीक्षाएं भी लीं। हर परीक्षा में हज़रत इबराहीम (अलैहिस्सलाम) स्वयं को उत्तीर्ण सिद्ध करते गए यहाँ तक कि ईश्वर ने उनकी अंतिम कठोरतम परीक्षा लेने का इरादा किया। उन्हें आदेश दिया कि (ईश्वर के लिए) अपने पुत्र 'इस्माईल' की बलि दे।

इस्माईल (अलैहि॰) इबराहीम (अलैहि॰) के इकलौते बेटे थे। वे बड़ी मिन्नत और आरज़ू के बाद इबराहीम (अलैहि॰) के बुढ़ापे में पैदा हुए थे। अतः सहज ही इसका अनुमान लगाया जा सकता है कि इस्माईल (अलैहि॰) इबराहीम (अलैहि॰) को कितने अधिक प्रिय और आँखों के तारे रहे होंगे। अतः हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) अपने इकलौते पुत्र इस्माईल (अलैहि॰) से बहुत अधिक प्यार करते थे। कोई साधारण व्यक्ति होता तो ये बातें ईश-आज्ञापालन में अवरोधक बनकर उसके आत्मबल को विचलित कर देने के लिए काफ़ी होतीं और वह इस कठोर ईश्वरीय परीक्षा में नाकाम हो जाता लेकिन जिस व्यक्ति से ईश्वर को भावी संसार में इंसानी नस्लों के लिए एकेश्वरवादी धर्म की मज़बूत व चिरस्थायी नींव रखवानी थी उस व्यक्ति—हज़रत इबराहीम (अलैहिस्सलाम)—ने इस परीक्षा में भी कामयाब होने की ठान ली। बेटे को इस ईश्वरीय आदेश के बारे में बताया तो बेटे (इस्माईल) ने कहा, "पिताजी, अल्लाह की ओर से जो आदेश हुआ है उसे पूरा कीजिए, ईश्वर ने चाहा तो आप मुझे धैर्यवान और जमे रहनेवाला पाएँगे।" घर से कुछ दूर 'मिना' की एक पहाड़ी पर ले जाकर बाप ने बेटे को लिटा दिया। छुरी गरदन पर फेरने ही वाले थे कि ईशवाणी हुई कि ऐ इबराहीम! तुम परीक्षा में पूरे उतरे। प्रतिदान के रूप में इस दुंबे (भेड़ समान पशु) की बलि दे दो। पास ही एक दुंबा खड़ा हुआ मिला। हज़रत इबराहीम (अलैहिस्सलाम) ने उसे क़ुरबान किया। क़ुरआन ने इसे 'ज़िबूहिन-अज़ीम' अर्थात् 'महान बलिदान' कहा है।

इसी महाबलिदान को याद करने और याद रखने के लिए उसी तिथि को 4000 वर्ष से पशुओं की बलि और क़ुरबानी की रीति चली आ रही है।

काल-कालांतर में इसमें कुछ विकृतियाँ आ गई थीं। लोग इस क़ुरबानी की असल स्पिरिट भी भूल चुके थे। आज से 1400 वर्ष पूर्व जब पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) के माध्यम से विशुद्ध एकेश्वरवादी धर्म का पुनरागमन हुआ और आप (सल्ल॰) पर ईशवाणी (क़ुरआन) अवतरित हुई तो क़ुरबानी के इतिहास को भी उसके शुद्ध व स्वच्छ रूप में लोगों के समक्ष लाया गया। ईश-दूत हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने लोगों के सामने इसकी विस्तृत व्याख्या की और इस पर स्वयं अमल करके भी दिखाया। क़ुरआन में अल्लाह ने फ़रमाया, ''(पशु का) न मांस अल्लाह तक पहुँचता है न रक्त, अपितु उस तक जो चीज़ पहुँचती है वह है तुम्हारा तक़वा (ईशपरायणता)।'' हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने अपनी उंगली सीने पर हृदय के स्थान पर रखकर तीन बार फ़रमाया, ''तक़वा यहाँ होता है, तक़वा यहाँ होता है, तक़वा यहाँ होता है।'' 'तक़वा' क़ुरआन और हदीस का एक पारिभाषिक शब्द है जिसका भावार्थ है ''ईश्वर की अवज्ञा (नाफ़रमानी) से बचते हुए जीवन का क्षण-क्षण बिताना''। अर्थात् कोई भी कार्य करते समय यह ध्यान अवश्य रखना कि कहीं वह ईश्वर की दृष्टि में अनुचित, अवैध, वर्जित और पाप तो नहीं है (अनुचित, अवैध और पाप होने की पूरी व्याख्या क़ुरआन और हदीस में उल्लिखित है)। अगर किसी काम में अल्लाह की नाफ़रमानी व अवज्ञा है तो उसपर अमल करना छोड़ देने को भी इस्लामी परिभाषा में 'तक़वा' कहते हैं।

निष्कर्ष

उपरोक्त विवरण का निष्कर्ष यह है :

- सृष्टि के सृजनकर्ता—अल्लाह—ने पृथ्वी की सारी जीवधारी व अजीवधारी वस्तुएँ मनुष्य के प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष उपयोग व उपभोग के लिए बनाई हैं। प्रत्यक्ष उपभोग में 'मांसाहार' भी आता है एवं इसे इस्लामी व ग़ैर-इस्लामी समाजों में समान रूप से मान्यता प्राप्त है। कुछ व्यक्तिगत या सीमित सामुदायिक अपवाद भी हैं जो नगण्य हैं।
- इस्लामी समाज में प्रचलित पशु-बलि (क़ुरबानी) का एक उत्कृष्ट व पवित्र इतिहास है। 1400 वर्ष से प्रतिवर्ष उसी इतिहास की याद ताज़ा की जाती है और मुस्लिम-समाज इस क़ुरबानी के माध्यम से अपने और अल्लाह के बीच 'दास' व 'स्वामी' के संबंध को घनिष्ट व दृढ़ करता है।

- क़ुरबानी के माध्यम से एक मुस्लिम व्यक्ति प्रयास करता है कि अपने अन्दर ईश-भय (तक़वा) के गुण को उन्नति व वृद्धि दे। बुरे और पाप के कामों से बचे।
- क़ुरबानी के माध्यम से एक मुस्लिम व्यक्ति अपने अन्दर यह आत्मबल पैदा करने की आध्यात्मिक शक्ति अर्जित करता है कि सत्यनिष्ठ जीवन बिताने के लिए तथा ईश आज्ञापालन में वह बड़े से बड़े स्वार्थ, लाभ, हित और भावनाओं की क़ुरबानी दे सके और सत्य-मार्ग से विचलित कदापि न हो।

जीव-हत्या अपने आप में न तो सही है न ग़लत, न उचित है न अनुचित, न निन्दनीय है न सराहनीय। यह बात यूँ भी कही जा सकती है कि जीव-हत्या अपने आप में सही भी है, और ग़लत भी। सही या ग़लत होना इस बात पर निर्भर है कि जीव-हत्या का 'उद्देश्य' क्या है।—और जीव-हत्या के संबंध में इस्लामी दृष्टिकोण भी यही है।—मिसाल के तौर पर एक जीवित मेंढक की अनर्थ हत्या करके उसे फेंक दिया जाए तो यह इस्लाम की दृष्टि में निर्दयता, हिंसा एवं पाप है लेकिन चिकित्सा-विज्ञान के विद्यार्थियों को शल्य-प्रशिक्षण (Surgical Training) देने के लिए उनके द्वारा मेडिकल-कॉलेजों में जो मेंढकों को चीरा-फाड़ा जाता है वह निरर्थक व व्यर्थ कार्य न होकर मनुष्य व मानव-जाति की सेवा के लिए होता है इसलिए यह न निर्दयता है, न हिंसा, न पाप; बल्कि लाभदायक, वांछनीय व सराहनीय है। हमारा विश्वास है कि हत्या व हिंसा के उचित या अनुचित होने का यही मापदण्ड, सम्पूर्ण मानव समाज में, प्राचीन काल से लेकर वर्तमान युग तक मान्य व प्रचलित रहा है। यही मानव-प्रकृति के भी अनुकूल है और मानव-जीवन की स्वाभाविक आवश्यकताओं के तक़ाज़ों (Requisites) के अनुकूल भी। क्योंकि इस्लाम एक स्वाभाविक व प्राकृतिक धर्म है; इसी लिए वह उपरोक्त बौद्धिक, संतुलित और स्वाभाविक वैश्विक सिद्धांत का पक्षधर भी है।

■■

P.B. No. H-53

मधुर सन्देश संगम

E-20, अबुल-फ़ज़्ल इन्कलेव,
जामिआ नगर, नई दिल्ली-110025

E-mail : madhursandeshsangam@yahoo.co.in

Rs.7/-